# इकाई 12 विकास संबंधी कार्यनीतियाँ

## इकाई की रूपरेखा


12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 अल्प विकास का तात्पर्य

12.3 प्राचीन पूँजीवादी प्रतिरूप

12.4 सोवियत समाजवादी पद्धति

12.5 विकास संबंधी चीनी कार्यनीति

12.6 तीसरी दुनिया की कार्यनीतियाँ

12.7 सारांश

12.8 शब्दावली

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 12.0 उद्देश्य

इस इकाई में विकास संबंधी सिद्धान्त एवं व्यवहार पर विचार किया गया है तथा पूँजीवादी, समाजवादी एवं विकासशील देशों द्वारा अपनाई विभिन्न कार्यनीतियों को समझाया गया है। इस इकाई के पढ़ने के पश्चात् आपः

- अल्प-विकास तथा विकासहीनता में अंतर समझ सकेंगे;
- पश्चिमी देशों तथा जापान में विकास के प्राचीन पूँजीवादी ढंग को समझ सकेंगे;
- विकास के सोवियत-प्रतिरूप और उसकी असफलता का विवरण दे सकेंगे;
- विकास के संबंध में चीन की परिवर्तनशील कार्यनीति के प्रक्षेप-पथ को समझ सकेंगे; और
- वैश्वीकरण एवं निजीकरण पर आधारित, विकास की नव्य उदारवादी कार्यनीति को समझ सकेंगे।

## 12.1 प्रस्तावना

आप राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन की प्रकृति तथा उसके प्रति राजनीतिक, आर्थिक दृष्टिकोण से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई में विकास और अल्पविकास की अवधारणाओं तथा तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में विकास की विविध कार्यनीतियों की व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है। विकास संबंधी कार्यनीतियों पर विचार करते हुए **उदारवादी** लेखक; इस संदर्भ में **लोकतंत्र**, **राष्ट्रीयता** एवं **आधुनिकीकरण** आदि अवधारणाओं पर ज़ोर देते हैं किंतु **अतिवादी** एवं **मार्क्सवादी** चिंतक; **अल्पविकास**, **निर्भरता** और **साम्राज्यवाद** जैसी अवधारणाओं पर ज़ोर देना पसंद करते रहे हैं।

## 12.2 अल्पविकास का तात्पर्य

19वीं शताब्दी के तीसरे दशक में जब लैटिन अमरीका के बहुत से देश स्पेनी एवं पुर्तगाली शासन की पराधीनता से मुक्त हुए तो वहाँ के लोगों के राजनीतिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन की व्याख्या करने के लिए उन देशों के लेखकों ने अल्पविकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। यद्यपि राजनीतिक रूप से उन्हें 150 वर्ष पहले स्वतंत्रता मिल चुकी थी किंतु लोकतंत्र, आधुनिकीकरण एवं राष्ट्रीय राज्य की दृष्टि से वे आर्थिक विकास की अत्यंत मंद गति से ग्रस्त थे।

**आन्द्रे गुंडर फ्रैंक** की दृष्टि से लैटिन अमेरिकी देशों के अतीत तथा कुछ अफ़्रीकी-एशियायी देशों के वर्तमान के अल्पविकास का तात्पर्य, परिमाण की दृष्टि से विकास का अभाव मात्र नहीं था। औद्योगीकरण से पूर्व यूरोप तथा अन्यत्र के सभी समाज अविकसित तो कहे जा सकते थे किन्तु उन्हें उस अर्थ में अल्प विकसित नहीं कहा जा सकता जिस अर्थ में राजनीतिक उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद लैटिन अमेरिकी या अफ़्रीकी-एशियायी देशों ने अपने आपको पाया था।

तथ्य यह है कि 'विकास' की तरह ही 'अल्पविकास' भी एक आधुनिक घटना है। उपनिवेशों, अर्द्धउपनिवेशों एवं नव्य उपनिवेशों के अल्प विकास तथा, साम्राज्यवाद के महानगरीय केन्द्रों के विकास, ऐतिहासिक प्रक्रिया के भागों के रूप में तथा वर्तमान एवं भविष्य में निरंतर पारस्परिक प्रभाव का प्रयोग करने की दृष्टि से, एक दूसरे से संबंधित हैं। **पॉल बैरन** ने कहा है कि अल्पविकास मूलतः एवं व्यवस्थापूर्वक उपनिवेशवाद, राजनीतिक प्रभुत्व एवं आर्थिक क्षेत्र में शोषक-शोषित-संबंध का सहचर रहा है।

विकास एवं अल्पविकास के अध्ययन में आर्थिक अधिशेष की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। आर्थिक अधिशेष किसी सामाजिक इकाई के उत्पादन का वह वास्तविक या संभाज्य अधिक भाग है जिसका निवेश या उत्पादन किया भी जा सकता है और नहीं भी किया जा सकता। इस संदर्भ में, आय या संपत्ति की हानि के रूप में पराजित राष्ट्र का त्याग अथवा प्राप्तकर्त्ता देश का कुल लाभ बहुत महत्वपूर्ण नहीं होता वरन् साम्राज्यवादी देश को प्रोद्भुत आर्थिक अधिशेष में उपनिवेश के योगदान का विशेष महत्व होता है। उपनिवेश के लिये यह तात्कालिक एवं संभाव्य पूँजी की हानि होती है।

जहाँ उपान्तीय समाजों को इस पूँजी के द्वारा विकास की संभावनाओं से वंचित रखा जाता है वहाँ महानगरीय साम्राज्यवादी देश इसका उपयोग अपने आर्थिक विकास के लिये कर सकता है। परिमाण की दृष्टि से अनुचर देश का योगदान कम हो या अधिक किन्तु अल्पविकास के रूप में उपनिवेश,अर्द्ध-उपनिवेश या नव्य उपनिवेश का बलिदान बहुत भारी होता है। जहाँ साम्राज्यवादी देश का थोड़ा सा लाभ होता है वहीं आश्रित देश की हानि दस या बीस गुनी होती है। इस प्रकार उपनिवेश को अपने संसाधनों, अनिवार्य सिंचाई व्यवस्था, अपनी सभ्यता, यहाँ तक कि अपने भौतिक अस्तित्व तक से हाथ धोना पड़ सकता है। यूरोपीय लोगों ने जब जातीय संहार करते हुए अमेरिका में उपनिवेश बनाए तो न जाने कितनी मूल अमेरिकी आदिम जातियाँ और राष्ट्रीयताएँ लुप्त प्रायः हो गईं। अतः विकास एवं अल्पविकास केवल आर्थिक राशियों का योगफल नहीं होता। वह उनका संचय होता है जिसे संपूर्ण सामाजिक संरचना एवं प्रक्रिया निर्धारित करती है।

यह स्पष्ट है कि अल्पविकसित देश यदि अंतर्राष्ट्रीय पूँजीवादी व्यवस्था में सम्मिलित होते हैं तो उन्हें सदैव अल्पविकसित ही रहना पड़ेगा। अल्पविकसित क्षेत्र को अल्पविकास का यह उपहार, साम्राज्यवाद और पूँजीवाद आज भी दिए चले जा रहे हैं। संयुक्त राज्य

अमेरिका, लैटिन अमेरिकी देशों के संसाधनों का दोहन करके उनकी उतनी हानि नहीं पहुँचाता जितनी हानि इन देशों के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक यहाँ तक कि सैन्य क्षेत्रों को अपनी आर्थिक, राजनैतिक तथा सैन्य शक्ति के प्रभाव में रखकर अल्पविकास की संरचना बनाए रखकर पहुँचाता है।

अल्पविकास की इस संरचना के कारण इन देशों के अधिकतर लोगों में ग़रीबी, राजनीतिक स्वतंत्रता के अभाव, सांस्कृतिक क्षति, वर्तमान उत्पादन में, ह्रास, बाल मृत्यु, असुविधाग्रस्त लोगों में भुखमरी, बीमारियों और महामारियों आदि का प्रसार होता रहता है। संभाव्य पूँजी का निरंतर निवास सभी अनुचर देशों तथा साम्राज्यवादी देशों की अर्थव्यवस्था में एक नाज़ुक भूमिका का निर्वाह करता है। भारत तथा अन्य उपनिवेशों से संपत्ति के असीमित निकास ने इंगलैण्ड में व्यापार-वृद्धि तथा औद्योगिक क्षेत्र को प्रोत्साहित किया था किन्तु भारत तथा अन्य उपनिवेशों में उसके कारण उद्योगबंदी की प्रक्रिया तीव्र हो गई थी। अफ़्रीकी दासों के व्यापार ने यूरोप में व्यापारियों तथा अमेरिका में बगीचों के मालिकों को लाभ पहुँचाया किंतु मध्य तथा पश्चिमी अफ्रीका के अनेक देशों की अर्थव्यवस्था को ध्वस्त कर दिया। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि दक्षिण एशिया तथा अंतः सहारयी अफ़्रीका में आज भी प्रति व्यक्ति औसत आय संसार में सब से कम है।

महत्वपूर्ण क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का नियंत्रण अल्पविकास के ढाँचे को बनाए रखने में भारी भूमिका अदा करता है। इसका एक उदाहरण है अल्पविकसित देशों से खनिज संसाधानों का निकाला जाना। दूसरा उदाहरण तेल को निकालने और वितरित करने का है। समय-समय पर ऐसे उदाहरण बदलते रहते हैं। सबसे प्रमुख क्षेत्र विदेशों के साथ व्यापार का होता है जिसपर उस देश का नियंत्रण रहता है जिसने अन्य देशों को अपने आश्रित कर रखा हो।

किसी क्षेत्र का बुर्ज़ुआ वर्ग और नौकरशाही का सम्मिलित प्रभुत्व उस क्षेत्र को अनिश्चित काल तक अल्पविकसित बनाए रखने और भविष्य में अल्पविकास को गुरुतर करने के लिये पर्याप्त होता है। अनेक अफ़्रीकी, एशियायी और लैटिन अमेरिकी देशों का बुर्ज़ुआ वर्ग बहु-राष्ट्रीय कंपनियों की आर्थिक शक्तियों तथा उन्नत देशों की सरकारों की राजनीतिक शक्तियों पर अत्यधिक निर्भर होता है। इसीलिए अल्पविकसित देशो में सत्ताधारी अभिजात वर्ग का निहित स्वार्थ, अल्पविकास के ढाँचे को अनिश्चितकाल तक सुरक्षित रखने में ही, सिद्ध होता है।

## 12.3 प्राचीन पूँजीवादी प्रतिरूप

21वीं शताब्दी के प्रारंभ में हमें पूँजीवाद, विकास के एक ऐसे प्रभावी प्रतिरूप की तरह प्राप्त हुआ है जिसने विकास की वैकल्पिक कार्यनीति के रूप में उभरे समाजवाद द्वारा दी गई चुनौती पर सफलतापूर्वक विजय प्राप्त की है। विकास के पूँजीवादी प्रतिरूप की प्रथम सफलता इंगलैण्ड के औद्योगीकरण में दिखाई पड़ी। यह सफलता 1760 ई. और 1820 ई. के बीच की घटना थी। यह उपनिवेशों में (इंगलैण्ड के) एकाधिकार वाले व्यापार के अंतर्गत निःशुल्क उद्यम पर आधारित व्यवस्था थी जिसे प्रायः उपनिवेशी संसाधनों की प्रत्यक्ष लूट का सहारा मिला होता था। कुछ स्थानीय विभिन्नताओं के साथ जिन अन्य देशों ने इसी प्रतिरूप को लागू किया, वे थे, फ़्रांस, हॉलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, इटली और कालान्तर में जापान।

विकास की दृष्टि से पूँजीवादी तंत्रों ने जिस मार्ग को अपनाया था उसका राजनीतिक

इतिहास न तो सहज था न सरल। पूँजीवादी विकास में पूँजी-संचय की अपेक्षाओं तथा राजनीतिक वैधता की आवश्यकताओं के बीच एक अंतर्विरोध झलकता है। इस अंतर्विरोध को, पूँजीवादी विकास के छह भिन्न-भिन्न चरणों के द्वारा हल करने का प्रयत्न किया गया था जिनके लिये वह क्रमागत स्थिति-निर्माणों की आवश्यकता हुई।

**एलन वोल्फ़** के अनुसार, संचयी स्थिति, पूँजीवादी औद्योगीकरण के विकास के प्रथम चरण के अनुरूप थी। संचय की वैधता की अपनी ही क्रियाविधि थी। क्योंकि संपत्ति-संचय की कोई भी रीति न्यायसंगत मानी जाती थी अतः संचयी स्थिति सैद्धान्तिक रूप से क़ानून के मनमानेपन से बँधी हुई नहीं थी। इस स्थिति ने उत्पादन को नवोदित व्यवस्था के पैमानों को परिभाषित करने, कामगारों में अनुशासन बनाए रखने, दीर्घ आर्थिक दशाओं को समायोजित करने, औपनिवेशिक युद्धों को लड़ने, पूँजीवादी हितों को जारी रखने, पूँजीपतियों को आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करने तथा विविध गतिविधियों को प्रोत्साहन देने के लिये सरकारी हस्तक्षेप का समर्थन किया।

**एडम स्मिथ** एवं **रिकार्डो** ने संचय का संकट बढ़ने पर समन्वित स्थिति एवं समन्वय को पूँजीवादी उत्पादन के अनिवार्य तत्व माना था। उन्होंने माना कि बाज़ार की निर्बाधता उत्पादकों के हितों का सामंजस्य उपभोक्ता के हितों से कराती तथा पूँजीपतियों के हितों का कामगारों के हितों से। यह कल्पना असंगति से ग्रस्त थी, सामाजिक डार्विनवाद (विकासवाद) की ओर ले जाती थी अतः एक न्यायसंगत कार्यविधि के रूप में असफल रही।

पूँजीवादी विकास की तीसरी अवस्था प्रसार की स्थिति थी। यद्यपि वित्तीय पूँजी के हित में साम्राज्यवादियों के द्वारा लागू की गई प्रसार की नीति, कामगार वर्ग को स्वदेशी दबावों से छुटकारा दिलाने वाली प्रतीत होती थी किंतु प्रसारवाद का अर्थ था प्राचीन (आभिजात्य) उदारवाद का क्षय। शिक्षा एंवं जन संस्कृति के माध्यम से उपनिवेशों में एक अर्द्ध-उपनिवेशों में निर्बाध व्यापार के अंत, असीमित आप्रवास तथा पूँजी के निर्यात की, सैद्धान्तिकता और कामगारों पर नियंत्रण के साथ संगति बिठाई गई थी। प्रथम विश्वयुद्ध ने पूँजीवादी साम्राज्यवाद के इस युग को समाप्त कर दिया।

मताधिकार की स्थिति, पूँजीवादी विकास की चौथी अवस्था थी। इसमें वर्गों और स्तरों के बीच के संघर्ष को नियमानुकूलता प्रदान करने के लिये सार्वजनिक शक्ति निजी निकायों को सौंपने का प्रयत्न किया गया था। इसमें शक्ति के बहुलतावादी विसर्जन की झलक मिलती थी। 'बहुलतावादी लोकतंत्र' की इस पूँजीवादी अवस्था से शक्ति के विसर्जन (सौंपे जाने) की आशा की गई थी, उसके प्रयोग में लाए जाने की नहीं। यह रहस्यात्मकता थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत तक मताधिकार की स्थिति क्षीण हो गई। निजी हित-समुदाय अपने आपको प्रभावशाली ढंग से व्यवस्थित करने में असमर्थ रहे। यूरोपीय देशों में आर्थिक योजनाओं पर और संयुक्त राज्य अमेरिका में सेना पर बढ़ाए गए व्यय के कारण ये देश अत्यधिक शक्तिशाली हो गए।

पूँजीवादी विकास का पाँचवाँ चरण, 'द्वैत स्थिति' थी। इस स्थिति में दो समान्तर संरचनाएँ अस्तित्व में आईं -- एक, जिस पर दमन के माध्यम से व्यवस्था बनाए रखने का भार था और दूसरी, जो लोकतंत्रीय मुखौटा प्रस्तुत करती थी। इस चरण में पूँजीवाद द्विशाखायी हो गया था जिसकी एक शाखा सेना एवं **नौकरशाही** थी तथा दूसरी शाखा जो जनसाधारण के लिये अधिक प्रत्यक्ष थी वह थी **मताधिकार पर आधारित संसदीय क्रियाविधि**।

पूँजीवादी विकास का छठा और वर्तमान चरण राष्ट्रीयता पारीय स्थिति है जिसपर बहुराष्ट्रीय निगमों के उदय ने प्रभुत्व जमा रखा है। यह पूँजी के अंतर्राष्ट्रीयकरण और बाज़ार के भूमंडलीकरण की देन है। किन्तु इस स्थिति में राष्ट्र-राज्य की समस्याओं से छुटकारा नहीं

मिल सका क्योंकि बहुराष्ट्रीय निगमों को सरकारों की सहायता की उस रूप में आवश्यकता पड़ी जैसी इससे पहले कभी नहीं देखी गई थी। इस स्थिति में विश्व-अर्थव्यवस्था तथा विश्व-बाज़ार के नियमन के लिये विश्व-बैंक, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक निधि एवं विश्व-व्यापार-संगठन जैसी संस्थाओं का आविर्भाव हुआ।

भूमंडलीकरण (या वैश्वीकरण), उदारीकरण एवं निजीकरण के अपने नारों के साथ नव्य उदारवाद का विजय घोष ही राष्ट्रीयतापारीय पूँजीवाद है। जो भी सही, संख्य की अपेक्षाओं एवं वैधता की आवश्यकताओं के बीच के तनावों को हल करने में पूँजीवाद की छह स्थितियों में से प्रत्येक असफल रही है। सोवियत पद्धति के समाजवाद की असफलता के बावजूद, आर्थिक विकास की विश्वव्यापी कार्यनीति के रूप में परवर्ती पूँजीवाद को अपनी युक्ति संगतता अभी सिद्ध करनी है।

**बोध प्रश्न 1**

**नोटः** क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) अल्पविकास और विकासहीनता में अंतर बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) पूँजीवादी विकास के किन्हीं द्रो चरणों का उल्लेख कीजिए और उनकी संगत स्थितियों के निर्माण को समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है?

क) अल्पविकास, परिमाणात्मक दृष्टि से विकास का अभाव है।

ख) औपनिवेशीकरण, अल्पविकास का कारण होता है।

ग) पूँजीवादी विकास का प्रथम प्रतिरूप जर्मनी था।

घ) पूँजीवादी विकास का प्रथम एवं मूल लक्षण संचय होता है।

ङ) मताधिकार-स्थिति, हित-समुदायों के आत्म-नियमन पर आधारित नहीं थी।

च) आज विकासशील देशों द्वारा स्वीकार की गई कार्यविधियों में अंतर्राष्ट्रीय-आर्थिक-निधि तथा विश्व-बैंक की भूमिका महत्वपूर्ण है।

छ) अल्पविकास का मुख्य कारण आर्थिक अधिशेष का अपव्यय होता है।

## 12.4 सोवियत समाजवादी पद्धति

सोवियत संघ तथा पूर्वी एवं मध्य यूरोप के सोवियत पद्धति के समाजवादी देशों में जिस सिद्धान्त एवं निर्देशक कार्यविधि को आधिकारिक रूप से अपनाया गया था उसका नाम **मार्क्सवाद-लेनिनवाद** था। पहले से विद्यमान तंत्र के सामाजिक आर्थिक आधार को परिवर्तित करने के लिये इसने उत्पादन की पूँजीवादी व्यवस्था को ही समाप्त करने का प्रयास किया।

मार्क्सवाद ने उत्पीड़ित कृषक वर्ग और कामगार वर्ग के गठबंधन द्वारा किए गए **वर्ग-संघर्ष** के माध्यम से **समाजवादी क्रान्ति कराई** तथा साम्यवादी दल के नेतृत्व में श्रमजीवी वर्ग के अधिनायकवाद की स्थापना द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था के विनाश का लक्ष्य निर्धारित किया।

किंतु पश्चिम के किसी भी उन्नत देश ने मार्क्स की समाजवादी कल्पना के आगे घुटने नहीं टेके। रूस में अवश्य क्रान्ति हुई जो उस समय, अपेक्षाकृत कम विकसित पूँजीवादी देश था। द्वितीय विश्वयुद्ध में नाज़ी जर्मनी की पराजय के बाद पूर्वी तथा मध्य यूरोप के "जनवादी लोकतंत्रीय देशों" पर सोवियत पद्धति का समाजवाद तो लाद दिया गया किंतु उसमें कृषि-कर्म का सामूहिकीकरण शामिल नहीं किया गया। एशिया के चीन एवं कुछ अन्य पड़ोसी देशों तथा बाद में क्यूबा में भी उनकी अपनी अपनी समाजवादी क्रान्तियाँ घटित हुई।

सोवियत रूस तथा उसके अन्य मित्र देशों की समाजवादी व्यवस्थाओं में सभी बड़े आर्थिक क्षेत्रों पर सार्वजनिक या सरकारी स्वामित्व का प्रावधान किया गया। देशी एवं विदेशी बाज़ार पर कठोर नियंत्रण लागू कर दिया गया। सोवियत पद्धति की अर्थव्यवस्था, क्रमागत पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से, राष्ट्रीय संसाधनों के व्यापक आयोजन पर आधारित थी। सभी प्रमुख क्षेत्रः जैसे, उद्योग, कृषि, व्यापार, बैंकिंग, परिवहन एवं संचार आदि; केन्द्रीकृत योजना के अंतर्गत लाए गए।

सोवियत रूस के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग पड़ जाने के कारण, केन्द्रीकृत योजना में; इस्पात, मशीनों और हथियारों जैसे भारी उद्योगों के विकास पर विशेष ज़ोर दिया गया। यह योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था, पूँजीवादी ढंग की मंदी और सुस्ती से मुक्त थी अतः इसमें आर्थिक विकास की दर तेज़ हुई। व्यापारिक समझौते अधिकतर समाजवादी गुट के देशों तक ही सीमित रखे गए किन्तु 1960 के बाद चीन को ऐसे समझौतों से बाहर कर दिया गया क्योंकि उसने अपने आपको समाजवादी राष्ट्रों के सोवियत गुट से अलग कर लिया था।

सोवियत संघ में कृषि-कार्य को सामूहिक किया गया था किन्तु अन्य पूर्वी यूरोपीय देशों में ऐसा नहीं किया गया। यद्यपि अर्थव्यवस्था में यह (कृषि) अपेक्षाकृत छोटा क्षेत्र था किंतु इसमें श्रमजीवियों की बहुत बड़ी संख्या काम करती थी। राज्य, व्यापक रूप से, उपभोक्ता माल के उत्पादन एवं वितरण पर नियंत्रण रखता था। मज़दूर संघ, आधिकारिक राज्य-अभिकरण होते थे और निर्णय लेने में श्रमिक परिषदों की सीमित भूमिका भी होती थी।

समाजवादी देशों की राजनीतिक प्रणाली, लोकतंत्रीय केन्द्रीकरण और एक दल; साम्यवादी दल; या इसी दल के नेतृत्व वाले किसी गठबंधन की तानाशाही पर आधारित थी। विकास कें लक्ष्यों एवं क्रियाविधि का निर्धारण मार्क्सवादी-लेनिनवादी दल ही करता था। सशक्त एकदलीय प्रणाली के आदेशों से ही हितों की अभिव्यक्ति एवं सामूहिकता नियंत्रित होती थी। औद्योगिक प्रबंधन एवं प्रशासन के निर्देशक सिद्धान्त, **अनुशासन** एवं **केन्द्रीकरण** थे।

निवेश के लिये आर्थिक अधिशेष लोगों को आवश्यक उपभोक्ता सामान से वंचित रखकर प्राप्त किया जाता था। सभी सामाजिक स्तरों, विशेषकर किसानों ने, औद्योगीकरण में तेज़ी लाने के उद्देश्य से पूँजी-संचयन में सोवियत राज्य की सहायता की। द्वितीय विश्वयुद्ध ने बहुत बड़े स्तर पर जिंदगियों और संपत्ति का विनाश हुआ था। युद्धोत्तर पुनर्वास की मार्शल योजना के अंतर्गत सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों को जो सहायता मिलनी चाहिए थी, संयुक्त राज्य अमेरिका ने उसे देने से इंकार कर दिया। शीतयुद्ध ने उन्हें सुरक्षा मामलों के लिये अधिक राशि निर्धारित करने के लिये विवश कर दिया था।

पूँजीवादी देशों के आक्रमण की धमकी तथा युद्धजनित विनाश के बावजूद सोवियत संघ, स्तालिन तथा स्तालिनोत्तर काल में 1970 तक, तेज़ी से आर्थिक विकास के पथ पर बढ़ता गया। योजनाबद्ध समाजवादी अर्थव्यवस्था ने निश्चित रूप से सोवियत संघ को विश्व की दूसरी महाशक्ति के रूप में स्थापित होने में समर्थ बनाया। सोवियत प्रणाली के समाजवाद ने पूर्वी यूरोप के कुछ देशों की पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्थाओं औद्योगिक समाजों में रूपान्तरित भी कर दिया।

साम्यवादी चीन ने भी 1949 से 1956 तक की क्रान्ति की सफलता के तुरंत बाद सोवियत प्रणाली की आर्थिक आयोजना की होड़ की। तीसरी दुनिया के अनेक राष्ट्रों; जैसे; नेहरू के नेतृत्व में भारत, नासिर के नेतृत्व में मिस्र एवं सुकर्णो के नेतृत्व में इंडोनेशिया आदि ने मुख्यतः सोवियत संघ से प्रेरणा लेते हुए राज्य-पूँजीवाद तथा अधिक व्यापक सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण की दिशा में प्रयोग किए।

यद्यपि एक लंबे समय तक आर्थिक विकास की सोवियत कार्यनीति, पूँजीवादी ढंग की मंदी एवं घाटे का परिहार करने में समर्थ रही किंतु अंततः उसने गतिहीनता एवं अत्यधिक सैन्यीकरण जैसी ख़राबियों के कारण दम तोड़ दिया। **गोर्बोचोब** ने **ग्लासनोस्त** (खुलेपन) एवं **पेरेस्तोइका** (पुनर्निर्माण) के द्वारा सोवियत प्रणाली में सुधार लाने का प्रयत्न किया किंतु उसका परिणाम सोवियत संघ के विघटन और रूस तथा अन्य गणराज्यों में पूँजीवाद के पुनर्स्थापन के रूप में सामने आया। पूर्वी यूरोप के अन्य देश भी पूँजीवादी प्रति क्रान्ति के सामने घुटने टेक गए। इसी सबने यूरोप में सोवियत प्रणाली के समाजवाद की असफलता पर मुहर लगा दी।

## 12.5 विकास संबंधी चीनी कार्यनीति

आर्थिक विकास की चीनी कार्यनीति का प्रतिरूप का अध्ययन सोवियत प्रणाली के विकास के साथ अंतर को भी स्पष्ट करता है और तुलना को भी। सोवियत संघ में **लेनिन** के नेतृत्व में **श्रमजीवी** वर्ग ने **क्रान्ति** की थी और वहाँ उद्योग, बैंकिंग, व्यापार, परिवहन तथा संचार व्यवस्था के राष्ट्रीयकरण द्वारा अर्थव्यवस्था को सीधे-सीधे समाजवादी ढाँचे में ढाल दिया गया था। **स्तालिन** के नेतृत्व में कृषि-कार्य का **सामूहिकीकरण** कर दिया गया। 1991 में सोवियत संघ के विघटन के रूप में वहाँ की अर्थव्यवस्था के ह्रास की अंतिम स्थिति से पूर्व क्रमागत पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से केन्द्रीकृत नियंत्रित अर्थव्यवस्था चलती रही थी।

चीन में 1949 में घटित **माओज़ेदुंग** की **क्रान्ति** को **'नव्य लोकतांत्रिक'** कहा गया था। इसमें 1954 तक राष्ट्रवादी एवं छोटे मध्यवर्गीय लोगों को भी चीन के आर्थिक विकास में भाग लेने की अनुमति दी गई थी। इस अवधि में एक आमूल परिवर्तनकारी भूमि सुधार क़ानून लागू किया गया जिसमें भूमि पर से सामंती ज़मींदारों का स्वामित्व समाप्त कर दिया गया और उसे वास्तविक खेतिहरों में बाँट दिया गया। उसके बाद माओ ने समाजवादी क्रान्ति का लगातार समर्थन किया। परिणामस्वरूप चीन के किसान सहकारी समितियों और समूहों में पुनर्विभक्त हो गए।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1953-1957) का लक्ष्य यह रखा गया कि तेज़ गति से व्यापक औद्योगिक ढाँचे की नींव रखी जाए। पूँजीगत माल के क्षेत्र में निवेश को प्राथमिकता दी गई (50 प्रतिशत से अधिक का निवेश किया गया)। उपभोक्ता माल की वृद्धि को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया गया। कृषि को केवल 6.2 प्रतिशत दिया गया तथा उसे प्रायः किसानों की व्यक्तिगत पहल के लिये छोड़ दिया गया। सोवियत संघ ने चीन को ऋण के रूप में लगभग 3 अरब डॉलर की राशि दी तथा तकनीकी एवं विशेषज्ञता संबंधी अत्यावश्यक सहायता भी प्रदान की।

**आशबुक** के अनुसार चीनी साम्यवादियों ने प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में कृषि क्षेत्र में बड़े पैमाने पर मशीनों का प्रयोग नहीं किया। यह एक सही कार्यनीति थी। पहले औद्योगिक आधार को विस्तृत करना अधिक आवश्यक था। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत तक, आर्थिक विकास की दृष्टि से, चीन पर्याप्त प्रगति कर चुका था।

1958 की **'लंबी छलाँग'** और 1958-1961 के संकटपूर्ण वर्षों में **कम्यूनों** (घनिष्ठताबद्ध गुटों) का सर्जन हुआ तथा **'द्विपद चालित'** औद्योगिक नीति लागू की गई जिसका अर्थ था, छोटे एवं बड़े उद्योगों का साथ-साथ विकास तथा देशी तकनीकों एवं आधुनिक विधियों का साथ-साथ प्रयोग।

**'पीपल्स कम्यून'**, केवल नई प्रशासनिक इकाई नहीं थी वरन उनका गठन भूमि संबंधी समाजवाद की दिशा में एक प्रयोग भी था। उनका उदय सहकारी समितियों के विलय का परिणाम था। पूरे चीन में सितंबर 1958 तक 90 प्रतिशत किसान कम्यूनों के रूप में संगठित हो चुके थे। 'लंबी छलांग', जिसके अंतर्गत प्रत्येक कस्बे या गाँव में भी इस्पात की ढलाई के कारखाने स्थापित करने की योजना को प्रोत्साहन दिया गया था, आर्थिक विकास के लिये ग़लत नीति सिद्ध हुई। बाढ़ और अकाल जैसी राष्ट्रीय आपदाओं (जिनमें **अमर्त्य सेन** के मत से लाखों लोगों की जानें गईं), सोवियत संघ द्वारा आर्थिक सहायता बंद करने और कम्यूनों में गंभीर संगठनात्मक समस्याओं ने 1958-1961 के संकटपूर्ण वर्षों में चीन की अर्थव्यवस्था को पंगु बना दिया। परिणामस्वरूप चीन का आर्थिक विकास काफ़ी धीमा हो गया। कालान्तर में चीनी नेतृत्व ने एक नई आर्थिक नीति लागू की जिसे **'बाज़ारी समाजवाद'** नाम दिया गया।

चीनी नेताओं ने समझ लिया कि 'पीपल्स कम्यूनों' का प्रयोग इसलिए विफल हुआ था क्योंकि उसमें विकास के लिये आवश्यक ऐतिहासिक चरणों की उपेक्षा करने का प्रयत्न किया गया था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के पहले तीन वर्ष गंभीर आर्थिक मंदी में और अंतिम दो वर्ष पुनर्योजन की नीति में बीतें। फिर 1963-65 के तीन वर्षों में, और भी अधिक पुनर्योजन किया गया। इसे द्वितीय एवं तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं के बीच का संक्रमण काल माना गया।

सन् 1966 मे चीन ने अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सफलतापूर्वक पुनर्योजन कर लिया था, गंभीर आर्थिक कठिनाइयों पर काबू पा लिया था और तृतीय पंचवर्षीय योजना को लागू

करना प्रारंभ कर दिया था। ठीक उसी समय **माओ ज़ेदुंग** ने अपनी **'सांस्कृतिक क्रान्ति'** प्रारंभ की। **डैंग ज़िओपिंग** के मत से उसमें क्रान्ति जैसी कोई बात थी ही नहीं। वह एक आंतरिक अव्यवस्था थी जिसने पूरे एक दशक के लिये चीन के आर्थिक विकास को तहस नहस कर दिया।

माओ ज़ेदुंग ने सांस्कृतिक क्रान्ति चीन में पूँजीवाद की वापसी को रोकने के लिये प्रारंभ की थी। वह मानता था कि ल्यू शाओंक़ी और डैंग ज़िओपिंग जैसे चीनी नेता, 'पूँजीवादी मार्ग के पथिक' थे जो चीन को पूँजीवादी विकास के अतीत की ओर वापस ले जाना चाहते थे। सांस्कृतिक क्रान्ति द्वारा पैदा हुई अस्त-व्यस्तता के कारण 1967-68 में चीन की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था तेज़ी से लड़खड़ा गई।

चीन के प्रधानमंत्री ज़ाउ-एन-लाइ व्यावहारिक नीतियों का पालन करते हुए अर्थव्यवस्था की क्षति पर किसी सीमा तक अंकुश लगाने में समर्थ रहे थे। माओं के बाद के नेता, सांस्कृतिक क्रान्ति को एक ऐसा युग मानते हैं जिसमें 'वाम पंथी' भूलों के कारण आर्थिक विकास की प्रक्रिया पूरी तरह पटरी से उतर गई थी। इस अवधि में राष्ट्रीय आय में 500 अरब युआन की कमी हुई थी और लोगों का जीवन-स्तर बहुत गिर गया था।

1976 में माओ ज़ेदुंग की मृत्यु के तथा माओ की वफ़ादार 'चौकड़ी' के दमन के पश्चात्, सत्ता डैंग ज़िओपिंग एवं तथाकथित 'पूँजीवादी मार्ग के पथिकों' के हाथों में आ गई। नए नेतृत्व ने बड़े पैमाने पर उस दिशा में आर्थिक सुधार लागू किए जिसे उन्होंने 'चीनी लक्षणों वाला समाजवाद' कहा। व्यवहार में यह क़दम विकास के लिये माओं द्वारा लागू की गई उस नीति का निराकरण था जिसमें माओ ने चीन की अर्थव्यवस्था में प्रारंभिक स्थितियों में ही समाजवादी सिद्धान्तों को लागू करने का प्रयत्न किया था। इस नीति ने चीन को नव्य उदारवाद की दिशा में धकेल दिया यद्यपि आधिकारिक रूप से डैंग ने कहा था कि आर्थिक विकास की नई कार्यनीति का 'बुर्ज़ुआ उदारवाद' से कोई संबंध नहीं था।

सरकार ने सामूहिक स्वामित्व वाली कृषि-भूमि को उत्तराधिकार के प्रावधानों सहित, दीर्घकालीन पट्टेदारी के आधार पर, किसानों में बाँटकर खेती में **'पारिवारिक दायित्व पद्धति'** को लागू किया। यह, चोर दरवाज़े से, चीन में निजी स्वामित्व वाली खेती को पुनर्प्रविष्ट कराना ही था। जो भी सही, यद्यपि इस नई पद्धति ने किसी सीमा तक ग्रामीण समाज में असमानता को बढ़ावा दिया किंतु इससे कृषि-उत्पादन में भारी वृद्धि हुई। चीन में सोवियत संघ की अपेक्षा यंत्रीकरण का स्तर नीचा होते हुए भी, चीन की परिवार-आधारित खेती सोवियत संघ की सामूहिक खेती की अपेक्षा उत्पादन की दृष्टि से बेहतर सिद्ध हुई थी। साम्यवादी दल के बारहवें और तेरहवें सम्मेलनों के बीच के पाँच वर्षों में आर्थिक सुधारों तथा बाहरी जगत के लिये अपनी अर्थव्यवस्था में छूट देने की शुरुआत दृष्टि से चीन ने बहुत प्रगति की। औद्योगिक पुनर्संरचना सम्पन्न हो गई थी। उत्पादक एवं लाभकारी उद्यमों में निवेश बढ़ा दिया गया था। कृषि, ऊर्जा संसाधनों, परिवहन एवं संचार को विशेष समर्थन दिया गया था। सन् 1990 तथा 1999 के बीच सकल राष्ट्रीय उत्पाद की औसत वृद्धि दर 10 से 11 प्रतिशत वार्षिक हो गई। इस दौर में, चीन की अर्थव्यवस्था तेज़ी से उदारीकृत एवं निजीकृत हुई थी। यह जिस पद्धति से किया गया था उसे चीनी **'संविदात्मक उत्तरदायित्व पद्धति'** कहना पसंद करते हैं। इसमें भूमि तथा संपत्ति प्राप्तकर्त्ताओं को पट्टेदारी के दीर्घकालीन अधिकार दिए गए थे।

चीन ने विदेशी पूँजी-निवेश को प्रोत्साहन प्रदान किया तथा सभी विदेशी निवेशकों पर अनुकूल शर्तें लागू कीं। तटीय प्रान्तों में चौदह विशिष्ट क्षेत्र बनाए गए जहाँ विदेशी

व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को 100 प्रतिशत निवेश की अनुमति दी गई थी। भारी परिणाम में विदेशी पूँजी का चीन में निवेश किया गया। विदेशों, विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान तथा पश्चिमी यूरोप के देशों के साथ चीन का व्यापार खूब फला फूला। हांगकांग तथा मकाओ अब इस आश्वासन के साथ साम्यवादी चीन के भाग बन चुके हैं कि आगामी 50 वर्षों तक उनकी (वर्तमान) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था बनी रहने दी जाएगी। साम्यवादी चीन ने यह वचन भी दिया है कि जब कभी भी ताईवान मुख्य भूमि में शामिल होगा, उसकी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को निरंतर संरक्षण दिया जाएगा।

चीनी विकास की कार्यनीति की शक्ति निम्नलिखित कार्यों में निहित हैः

1) ज़मींदारी प्रथा की समाप्ति, अनुत्पादक कम्यून प्रणाली का अंत, कृषि में पारिवारिक पट्टेदारी वाले खेतों की स्थापना, ग्रामीण उद्यमों में किसानों की पहल को प्रोत्साहन।

2) जनसाधारण की ग़रीबी का उन्मूलन, शिक्षा को प्रोत्साहन तथा निरक्षरता का निराकरण, व्यापक स्वास्थ्य सेवाएँ, एक संतान के मानक का पालन करते हुए जनसंख्या-नियंत्रण।

3) आर्थिक सुधार, जिनमें अर्थव्यवस्था को उदार बनाया गया और उसे शेष विश्व के लिये मुक्त किया गया।

4) चीन में अपनी नीतियों में बाज़ार, लाभप्रदता, प्रतिस्पर्द्धा तथा विश्व अर्थव्यवस्था के एकीकरण के महत्व को अपनी शर्तों पर मान्यता प्रदान की।

5) चीनी नेतृत्व मानता है कि चीन में समाजवाद अभी प्रारंभिक अवस्था में है और उसका यह संक्रमण काल एक शताब्दी तक चल सकता है।

6) चीन के विकास की कार्यनीति व्यावहारिकता पर आधारित होनी चाहिए। जैसा डैंग ने कहा है कि बिल्ली काली हो या सफ़ेद (इससे फ़र्क नहीं पड़ता) मुख्य बात यह है कि उसमें चूहों को पकड़ने की सामर्थ्य होनी चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा निर्धारित क्रय-शक्ति-समता के मानदंडों के आधार पर चीन सकल घरेलू उत्पाद में, संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद दूसरे स्थान पर पहुँच चुका है। यहाँ तक कि जापान भी उसकी तुलना में पिछड़कर आज तीसरे स्थान पर रह गया है।

**बोध प्रश्न 2**

**नोटः** क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) सोवियत-विकास-कार्यनीति की तीन मुख्य विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) चीन में माओ-परवर्ती-कार्यनीति अपनी पूर्ववर्ती नीति से निम्नलिखित संदर्भों में भिन्न है।

.....

.....

.....

.....

## 12.6 तीसरी दुनिया की कार्यनीतियाँ

एशिया, अफ़्रीका एवं लैटिन अमेरिका के अल्पविकसित देशों ने अपने अपने यहाँ 1950 से 1970 तक अर्थव्यवस्था के उस प्रतिरूप को लागू किया जिसे **चार्ल्स बैटेल्हीम** ने **राज्य-पूँजीवादी-प्रतिरूप** कहा है। यह ठीक है कि इनकी अर्थव्यवस्थाओं में राज्य की भूमिका हर देश में अलग-अलग रही। इसका उद्देश्य अवसरंचना को सुदृढ़ करना तथा स्वतंत्र आर्थिक आधार तैयार करना था जिसके लिये निजी पूँजी उपलब्ध नहीं हो पा रही थी। सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान काफ़ी कम; जैसे इंडोनेशिया में 20 प्रतिशत या काफ़ी अधिक जैसे अल्जीरिया में 70 प्रतिशतः रहता था।

किंतु अनेक विकासशील देशों ने न तो राज्य-पूँजीवाद की कार्यनीति को लागू किया और न किसी बड़े सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण किया। लैटिन अमेरिका के अधिकतर देशों; जैसे, ब्राज़ील, अर्जेंटाइना और चिली ने पूँजीवादी प्रतिरूप को लागू किया जिसमें विदेशी पूँजी की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। मैक्सिको जैसे देश में भी, जहाँ मिश्रित अर्थव्यवस्था का प्रयोग किया गया था, विदेशी पूँजी सर्वथा अनुपस्थित नहीं थी। दक्षिण पूर्वी एशियायी देशों ने भी आर्थिक विकास की बाज़ार-आधारित नीति को ही पसंद किया था। कालान्तर में दक्षिण कोरिया, ताइवान, हांगकांग तथा सिंगापुर एशिया के आर्थिक शिखरों के रूप में उभरे और पूँजीवादी विकास के उत्कृष्ट एशियायी प्रतिरूप बन गए।

पॉल बैरेन के अनुसार, तीसरी दुनिया के देशों की विकास संबंधी कार्यनीतियों में दो भिन्न प्रकारों के अभिविन्यास दिखाई पड़ते हैं। वह कहता है कि पिछड़े हुए देशों में से बहुत बड़ी संख्या उन देशों की है जो स्पष्टतः पुनर्निवेशवादी अभिलक्षण वाली शासन प्रणाली द्वारा शासित हैं और उनकी कार्यनीतियाँ भी पुनर्निवेशी पूँजीवादी विकास पर आधारित हैं। **बैरेन** के अनुसार दूसरे अल्पविकसित देश वे हैं जहाँ 'नव्य व्यवहार' के अभिविन्यास वाली सरकारें हैं, जैसे, भारत, इंडोनेशिया तथा बर्मा (मयनमार) आदि। पहली श्रेणी में उसने मध्य-पूर्व, लैटिन अमेरिका एवं अफ़्रीकी-एशियायी तेल उत्पादक देशों तथा लैटिन अमेरिकी मूल्यवान खनिजों एवं खाद्य पदार्थों के उत्पादक देशों को रखा। इन में से बहुत से देशों में पश्चिम समर्थक तानाशाहों का शासन है जो विकास की पुनर्निवेशी पूँजीवाद पर आधारित नीति का पालन करने के लिये बाध्य है। ऐसे शासनों के लिये बैरेन द्वारा कथित अभिलक्षण, 'पुनर्निवेशी', अब अतीत का विषय हो चुका है और प्रचलन में नहीं रहा।

दूसरी श्रेणी, **'नव्य व्यवहारवादियों'** में बैरेन ने उन देशों को रखा था जहाँ कोई राष्ट्रवादी बुर्ज़ुआ सत्ता में था और जो अन्य शोषित वर्गों के सहयोग से, देश के सर्वांगीण विकास के लिये एक स्वतंत्र आर्थिक आधार तैयार करने का प्रयत्न कर रहा था। इन देशों में सामाजिक मुक्ति के लिये बहुत दबाव नहीं था अतः यहाँ की सरकारों ने औद्योगिक पूँजीवाद के लिये एक स्वदेशी प्रकार की विकसित करने वाली कार्यनीति को अंगीकार किया जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र, दोनों में सहयोग का संबंध हो।

किन्तु **नव्य व्यवहारवादी** शासन प्रणाली भी कुछ अंतर्विरोधों से ग्रस्त है। उदाहरण के लिये यह **भू-स्वामियों** को अप्रसन्न नहीं कर सकती अतः कृषक-समर्थक भूमि-सुधारों को लागू नहीं कर सकती। यह प्रणाली, व्यापारियों और (ऋणजीवी) महाजनों को प्राप्त विशेष सुविधाओं में हस्तक्षेत्र नहीं कर सकती। यह शासन प्रणाली कामगारों की जीवन-दशाओं को सुधारने में असमर्थ है क्योंकि यह व्यापारी वर्ग को नाराज़ नहीं कर सकती। साम्राज्यवाद विरोधी होते हुए भी यह प्रणाली विदेशी पूँजी का समर्थन करती है।

इस शासन-प्रणाली में छोटे मोटे सुधार आमूल परिवर्तनों के स्थानापन्न हो जाते हैं और क्रान्तिकारी कार्यों का स्थान क्रान्तिकारी शब्द ले लेते हैं। यह प्रणाली औद्योगीकरण के लिये लड़ने में असमर्थ रहती है और राष्ट्र के पिछड़ेपन, ग़रीबी, निरक्षरता या अस्वस्थता आदि के विरुद्ध निर्णायक प्रहार के लिये लोगों को जुटाने में भी असमर्थ रहती है। राज्य-पूँजीवादी-प्रतिरूप, सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात-संयंत्र लगा सकता है, उर्वरक-संयंत्रों की स्थापना कर सकता है, जल-विद्युत-शक्ति का विकास कर सकता है, तेल एवं गैस उत्पादक संयंत्रों का निर्माण कर सकता है; आदि आदि; किंतु सरकार कभी भी निजी क्षेत्र के किसी उद्योग का राष्ट्रीयकरण नहीं करती। दूसरी ओर निजी क्षेत्र से जिस भूमिका को निभाने की अपेक्षा की जाती है उसमें वह असमर्थ रहता है। जनसंख्या-वृद्धि पर नियंत्रण नहीं रह पाता और सच्चे अर्थों में उसके कारण प्रायः आर्थिक विकास निष्प्रभावी हो जाता है।

राज्य-पूँजीवादी प्रतिरूप पर आधारित विकास-कार्यनीतियों को आज लगभग सभी विकासशील देशों ने अस्वीकार कर दिया है। प्रायः सभी देशों में, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक की सलाह से और उन्हीं के द्वारा समर्थित नव्य उदारवादी आर्थिक सुधार, भिन्न-भिन्न गतियों से चल रहे हैं। भारत सहित सभी विकासशील देशों में सरकारी क्षेत्र को धीरे-धीरे हटाया जा रहा है।

नव्य-उदारवादी सुधारों को लागू करने में चीन, दक्षिण कोरिया, थाईलैण्ड, सिंगापुर, मलेशिया, इंडोनेशिया, फिलिपीन्स और कुछ लैटिन अमरीकी देशों ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। इसके विपरीत भारत में सुधार-कार्यक्रमों के क्षीणकाय प्रभावों पर अभी बहस ही चल रही है। दक्षिण-अफ़्रीका को अपवाद मान लें तो अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष - विश्व बैंक - प्रतिरूप ने, अफ़्रीकी देशों की मदद, सराहनीय ढंग से नहीं की है। यह ठीक है कि सभी विकासशील देशों के आभिजात्य-शासक-वर्ग द्वारा उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण को विकास के मार्गदर्शक सिद्धान्तों के रूप में सार्वभौमिक मान्यता प्रदान की गई है। मूलतः यह आर्थिक विकास की **बाज़ारोन्मुख, पूँजीवादी** कार्यनीति है।

**बोध प्रश्न 3**

**नोटः** क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) तीसरी दुनिया के देशों द्वारा अपनाई गई विकास संबंधी कार्यनीतियों के मूल लक्षणों को गिनाइए।

.....

.....

.....

.....

## 12.7 सारांश

नव्य उदारवाद के भारी प्रसार के वर्तमान दौर में अध्ययन करते हुए यह माना जा चुका है कि विकास के क्षेत्र में सरकार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। अल्पविकास का अर्थ, केवल इतना ही नहीं है कि प्रति व्यक्ति की आय कम हो वरन् उसमें सुदृढ़ संरचनाओं का अभाव, अनुपलब्ध बाज़ार एवं बाहरी दबाब भी शामिल होते हैं। विकास की समुचित कार्यनीति के लिये, उत्पादन पद्धति का सक्षम प्रबंध, मानव-विकास एवं मानवाधिकारों के दृष्टिकोण तथा पुनर्वितरण की नीतियों के पालन की आवश्यकता होती है। विकास की कार्यनीतियों का उद्देश्य, क्षेत्रों के बीच किसी अर्थव्यवस्था तथा विभिन्न देशों के बीच अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की असमानताओं में कटौती, होना चाहिए। सोवियत प्रणाली के समाजवाद के पतन से पूँजीवाद, अर्थात् बाज़ारोन्मुखी अर्थ-व्यवस्था; की संगति असंदिग्ध रूप से प्रमाणित नहीं हो गई। यह अर्थव्यवस्था अब भी आय के अनुचित वितरण एवं समय-समय पर होने वाली मंदी से ग्रसित रहती है। आज भी बहुत से देश अल्पविकसित हैं।

## 12.8 शब्दावली

**अल्प विकास** : किसी आश्रित अर्थव्यवस्था में साम्राज्यवादी हस्तक्षेप द्वारा प्रेरित विकृत विकास।

**जाति-संहार** : किसी पराजित जाति का जानबूझकर किया गया विनाश।

**बहुराष्ट्रीय** : समस्त भूमंडल पर बहुत से देशों में सहायक प्रचालन वाली कंपनियाँ।

**पूँजीवाद** : उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व पर आधारित अर्थव्यवस्था।

**समाजवाद** : उत्पादन के साधनों के सामाजिक या सरकारी स्वामित्व पर आधारित अर्थव्यवस्था।

**नव्य उदारवाद** : पूरे संसार में मुक्त उद्यम एवं मुक्त व्यापार का समर्थन करने वाला नया दृष्टिकोण।

**मार्क्सवाद-लेनिनवाद** : भूतपूर्व सोवियत संघ तथा साम्यवादी चीन द्वारा आधिकारिक रूप से स्वीकृत समाजवादी प्रतिरूप का सिद्धान्त।

**पूँजीवादोन्मुख पथिक** : डैंग ज़िओपिंग जैसे चीनी नेता, जो माओ ज़ेदुंग के मत में, चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना का प्रयत्न कर रहे थे।

**क्रय-शक्ति-समतुल्यता** : राष्ट्रीय मुद्रा की क्रय-शक्ति के अनुरूप सकल घरेलू उत्पाद की गणना की विधि।

**अनुचर देश** : कोई उपनिवेश अथवा स्वतंत्र देश जो किसी उपनिवेशवादी राज्य अथवा प्रभावी (प्रबल) शक्ति पर आश्रित हो।

**परिधीय समाज** : ऐसे समाज (समुदाय) जिन्हें शक्ति-आकलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं माना जाता। उन्हें प्रायः उपनिवेश बनकर रहना पड़ा था।

## 12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Asirvatham, E & Mishra, K.K. 2001, *Political Theory,* Chapters 12, 13 and 14, S.Chand & Company, New Delhi

Baran, Paul, A., 1973, *Political Economy* of *Growth,* Penguins, Chapters 4, 5, 6 and 8.

Clzilcote, Ronald H., 1981, *Theories of Comparative Politics*, Chapter 7, Westview Press, Boulder – Colorado.

Frank, Arthur, Gunder, 1967, *Capitalism and Underdevelopment in Latin America,* Monthly Review Press, New York.

Kay, Geoffrey, 1975, *Development and Underdevelopment – A Marxist Analysis,* Macmillan Press, London.

Misra, K.K. & Iyengar, Kalpana M., 1988, *Modern Political Theory, Part 111,* Chapters 5, 6, 12 and 13, S. Chand & Company, New Delhi.

## 12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) अल्पविकास, पूँजीवादी साम्राज्यवाद कृत विकृत विकास होता है जबकि विकासहीनता वह ऐतिहासिक दशा होती है जो साम्राज्यवाद द्वारा शोषित न किए गए किसी देश में औद्योगीकरण से पूर्व विद्यमान थी। भारत, 1947 में अल्प विकसित था किंतु जापान 1868 में अविकसित (विकासहीन) था।

2) निम्नलिखित छह में से कोई दोः

   1) संचय (संचयी स्थिति)
   2) समन्वय (समन्वयी स्थिति)
   3) बहुलतावाद (मताधिकार स्थिति)
   4) प्रसार (प्रसारवादी स्थिति)
   5) द्वैतवाद (द्वैत-स्थिति) तथा
   6) बहुराष्ट्रीयतावाद (राष्ट्रीयतापारीय स्थिति)

3) क) ग़लत।

   ख) सही

   ग) ग़लत।

   घ) सही।

   ङ) ग़लत।

   च) सही।

   छ) सही।

   ज) सही।

**बोध प्रश्न 2**

1) 1) केन्द्रीकृत आर्थिक योजना।

   2) उद्योग, व्यापार, बैंकिंग, परिवहन एवं संचार का राष्ट्रीयकरण।

   3) कृषि का सामूहिकीकरण।

2)

| **माओ की कार्यनीति** | **उत्तर-माओ कार्यनीति** |
|---|---|
| कृषि का सामूहिकीकरण। | पारिवारिक खेत। |
| पीपल्स कम्यून। | कम्यूनों का उन्मूलन। |
| राजकीय क्षेत्र का प्रभुत्व। | चरणबद्ध निजीकरण। |
| विदेशी पूँजी का विरोध। | विदेशी पूँजी का स्वागत। |
| सैद्धान्तिक समाजवाद। | नव्य-उदारवादी सुधार। |

**बोध प्रश्न 3**

1) तीसरी दुनिया के देशों द्वारा अपनाई गई विकास-नीतियाँ सर्व सामान्य नहीं थीं -

   1) कुछ देशों; जैसे, भारत, मिस्र एवं अल्जीरिया, ने राज्य-पूँजीवादी-प्रतिरूप स्वीकार किया और अर्थव्यवस्था के राजकीय क्षेत्र का सर्जन किया।

   2) किंतु सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ, इन देशों में एक निजी क्षेत्र भी सह-अस्तित्व में रहा जिसे आर्थिक विकास में योगदान के लिये प्रोत्साहित किया गया।

   3) ब्राज़ील, अर्जेण्टाइना, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर आदि ने प्रारंभ से ही विकास की बाज़ारोन्मुखी कार्यनीति को स्वीकार किया।

   4) दोनों ही प्रकार के विकासशील देशों में विदेशी पूँजी को आमंत्रित किया गया किन्तु बाज़ारोन्मुखी अर्थव्यवस्थाओं को विदेशी पूँजी अधिक उपलब्ध हुई।

   5) कुछ देशों; जैसे, कंबोडिया, उत्तरी कोरिया एवं क्यूबा; ने विकास की समाजवादी कार्यनीति को सोत्साह अपनाया।

   6) 1970 के बाद सभी विकासशील देश धीरे-धीरे अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक के निर्देशक सिद्धान्तों के प्रभाव में आते गए क्योंकि एक-एक करके उन सबके सामने विदेशी मुद्रा का संकट उपस्थित होता गया।

   7) चीन सहित सभी विकासशील देशों में, चरणबद्ध रूप से किंतु अलग अलग वेग से नव्य उदारवादी आर्थिक सुधार लागू किए गए।

   8) नव्य उदारवाद, मुक्त व्यापार एवं मुक्त उद्यम के आधार पर, जहाँ तक संभव हो, तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं के वैश्वीकरण का समर्थन करता है।

   9) सभी विकासशील देश, आर्थिक विकास को मानवोत्थान एवं पुनर्वितरण संबंधी न्याय के साथ संयुक्त करने के लिये प्रयास करते रहते हैं।

   10) व्यवहार में चीन, वियतनाम एवं क्यूबा जैसे समाजवादी देशों को छोड़कर अन्य विकासशील देशों की विकास नीतियों ने सामाजिक असमानताओं में वृद्धि की है।